मरुधर और मालवे के पाँच तीर्थ

व्याख्यान-वाचस्पति श्रीमद्विजययतीन्द्रसूरि शिष्य
मुनि देवेन्द्रविजय 'साहित्यप्रेमी'...

बीसवीं शताब्दी भारतीय इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इसमें अनेक धर्मप्रचारक और राष्ट्रीय नेता पैदा हुये हैं। धर्मोद्धारकों में परम पूज्य प्रभु श्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज का विशिष्ट और गौरवशाली स्थान है। आपने अपनी सर्वतोमुखी शास्त्र-सम्मत्त विविध प्रवृत्तियों से जैन समाज का बड़ा ही गौरव बढ़ाया है। आपने जहाँ क्रियोद्धार कर श्रमण-संघ को वास्तविक प्रकार से चारित्र-पालन का मार्ग पुनः दिखलाया, वहाँ साहित्य-निर्माण-कार्य भी महत्त्वपूर्ण प्रकारों से सम्पन्न किया और प्राचीन तीर्थों का उद्धार कार्य भी। आपने जिन प्राचीन तीर्थों और चैत्यों की सेवा की हैं, उनका यहाँ इस लघु लेख में परिचय देना ही हमारा ध्येय है।

१. श्रीकोरटाजीतीर्थ :-

कोरंटनगर, कनकापुर, कोरंटपुर, कणयापुर और कोरंटी आदि नामों से इस तीर्थ का प्राचीन जैन-साहित्य में उल्लेख मिलता है। उपकेशगच्छ-पट्टावली के अनुसार श्री महावीर देव के महापरिनिर्वाण के पश्चात् ७० वें[१] वर्ष में श्री पार्श्वनाथसंतानीय श्री स्वयंप्रभसूरीश पट्टालंकार उपकेशवंश-संस्थापक श्रीरत्नप्रभसूरिजीने ओसिया और यहाँ एक ही लग्न में श्रीमहावीर देव की प्रतिमा स्थापित की थी। इस नगर से श्रीरत्नप्रभसूरि के शासनकाल में ही श्रीकनकप्रभसूरि से उपकेशगच्छ में से कोरंटगच्छ की उत्पत्ति हुई थी। श्रीकनप्रभसूरि रत्नप्रभसूरि के गुरुभाई थे। कोरंटगच्छ में अनेक महाप्रभाविक जैनाचार्य हुये हैं। वि.सं. १५२५ के लगभग कोरंट तपा नामक एक शाखा भी निकली थी। कई शताब्दियों तक यह नगर जनधन और सब प्रकार से उन्नत और समृद्ध रहा है। वर्तमान में इसके खण्डहर देख कर भी ऐसा विश्वास किया जा सकता है और उल्लेख तो मिलते ही हैं।

यह प्राचीन समृद्ध नगर ५०० घरों के एक लघु ग्राम के रूप में आज एरणपुरा स्टेशन से १२ मील दूर पश्चिम की ओर विद्यमान है। इसका वर्तमान नाम कोरटा है। अभी यहाँ जैनों के ५० घर और उनमें लगभग २५० मनुष्य हैं तथा चार जिनेन्द्र मान्दिर हैं। जिन की व्यवस्था स्वर्गीय गुरुदेव प्रभु श्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज के उपदेश से संस्थापित श्री जैन पीढी करती आ रही है।

(१) श्रीमहावीर-मन्दिर :-

कोरटा के दक्षिण में यह मन्दिर है। यह विशेषतः प्राचीन सादी शिल्पकला के लिये नमूनारूप है। श्री श्री रत्नप्रभसूरीश्वजीने वीरात् सं. ७० में इसकी प्रतिष्ठा की थी। विक्रम संवत् १७२८ में श्रावण सुदी १ के दिन श्री विजयप्रभसूरि के आज्ञावर्ती श्री जयविजय गणीने प्राचीन प्रतिमा के स्थान पर नवीन दूसरी प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी। तत्सम्बन्धी एक लेख मन्दिर के मण्डप के एक स्तम्भ पर उत्कीर्ण है। इस श्रीजयविजयगणीप्रतिष्ठित प्रतिमा का उत्तमांग विकल हो जाने पर आचार्यवर्य श्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराजने अपने उपदेश से मन्दिर का पुनरुद्धार करवाकर नूतन श्री वीरप्रतिमा प्रतिष्ठित की और श्रीजयविजयगणी द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमा लेपादि से सुधरवा कर मन्दिर की नव चौकी में विराजमान करवा दी।

(२) श्रीआदिनाथ-मन्दिर :-

सन्निकटस्थ धोलागिरि की ढालू जमीन पर यह मन्दिर है। इसको विक्रम की १३वीं शताब्दी में महामात्य नाहड़ के किसी कुटुम्बीने अपने आत्मकल्याण के लिये निर्मित किया ज्ञात होता है। इसमें (आयतन) निर्माता की प्रतिष्ठित करवाई हुई प्रतिमा खण्डित हो जाने पर उसे हटा कर नवीन प्रतिमा वि.सं. १९०३ मेंदेवसूरिगच्छीय श्रीशान्तिसूरिजीने प्रतिष्ठित की और वही प्रतिमा अभी भी विराजित है। मूलनायकजी की प्रतिमा के दोनों ओर विराजित प्रतिमाएँ श्रीविजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज द्वारा प्रतिष्ठित नूतन बिम्ब हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३) श्रीपार्श्ववनाथ मन्दिरः-

यह जिनालय गाँव के मध्य में है। इसको कब, किसने बनाया और किस गच्छ के मुनिपुंगव ने प्रतिष्ठित किया यह अज्ञात है। अनुमानतः ज्ञात होताहै कि ऊपर वर्णित श्रीआदिनाथ चैत्य से यह प्राचीन है। इसकी स्तम्भमाला के एक स्तम्भ पर ॐना++++ढ़ा' लेखाक्षर अवशिष्ट हैं। इससे ज्ञात होता है कि महामात्य श्री नाहड़ के द्वितीय पुत्र श्री ढ़ाकलजी द्वारा निर्मित यह मन्दिर हो और इसी से अमात्य के नाम के आगे मंगल का संसूचक ॐ लगाया हो। श्रीमहावीर मन्दिर के स्तम्भों पर भी 'ॐना०००ढ़ा' लिखा हुआ मिलता है। संभवतया उक्त मंत्रीपुत्रने प्राचीन श्री वीर मन्दिर का भी उद्धारकार्य करवाया हो। इस पार्श्वनाथ मन्दिर का उद्धार विक्रमीय सत्रहवीं शताब्दी में कोरटा के ही नागोतरागोत्रीय किसी श्रावक ने करवाया था। तत्पश्चात् समय-समय पर कुछ अंशों में उद्धार-कार्य होता रहा है। इसमें पहले श्रीशान्तिनाथ भगवान की प्रतिमा मूलनायक के स्थान पर विराजमान थी। उसके विकलांग हो जाने पर उसके स्थान पर श्रीपार्श्वनाथजी की प्रतिमा विराजित की गई; जिसकी प्राणप्रतिष्ठा श्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरीश्वजी महाराजने की है। श्री पार्श्ववनाथजी के दोनों ओर विराजित प्रतिमा भी नूतन हैं।

(४) श्रीकेशरियानाथ का मन्दिर :-

विक्रम संवत् १९११ जेठ सुदि ८ के दिन प्राचीन श्री वीर मन्दिर के कोट का निर्माण-कार्य करवाते समय कहीं बाईं ओर की जमीन के एक टेकरे को तोड़ते समय श्वेत वर्ण की पाँच फीट प्रमाण की विशालकाय श्रीआदिनाथ भगवान की पद्मासनस्थ और इतनी ही बड़ी श्रीसंभवनाथ तथा श्रीशान्तिनाथजी की कायोत्सर्गस्थ मनोहर एवं सर्वांगसुन्दर अखण्डित दो प्रतिमायें निकली थीं। इन कायोत्सर्गस्थ प्रतिमाओं को विक्रम संवत् ११४३ वैशाख सुदि द्वितीया गुरुवार को श्रावक रामाजरुक ने बनवाया और बृहद्गच्छीय श्रीविजयसिंहसूरिजीने इनकी प्रतिष्ठांजनशलाका की। श्रीआदिनाथ प्रतिमा पर लेखादि नहीं है । इन प्रतिमाओं को विराजमान करने के हित कोरटा के श्रीसंघ ने श्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज के उपदेश से यह विशालकाय दिव्य एवं मनोहर मन्दिर बनवाया है। इसका प्रतिष्ठा-महोत्सव विक्रम संवत् १९५९ वैशाख सुदि पूर्णिमा को श्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज के करकमलों से ही सम्पन्न हुआ था। यह प्रतिष्ठा-महोत्सव मरुधर के १५० वर्ष के इतिहास में आहोर के प्रतिष्ठोत्सव (१९५५) के पश्चात् दूसरा था।

प्रतिष्ठाप्रशस्तिः-

वीरनिर्वाणसप्तति-वर्षात्पार्श्वनाथसंतानीयः ।
विद्याधरकुलजातो, विद्यया रत्नप्रभाचार्यः ।।१।।
द्विधा कृतात्मा लग्ने, चैकस्मिन् कोरंट ओसियायां ।
वीरस्वामिप्रतिमा-मतिष्ठपदिति पप्रथेऽथ प्राचीनम् ।।२।।
देवड़ा ठक्कुर विजयसिंहे, कोरंटस्थ वीरजीर्णबिम्बम् ।
उत्थाप्य राधशुक्ले निधिशरनवेन्दुके पूर्णिमा गुरौ ।।३।।
सुस्थिरवृषभे लग्ने, तस्य सौधर्मबृहत्तपोगच्छीयः ।
श्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरिः प्रतिष्ठांजनशलाके चक्रे ।।४।।
कोरंटवासिमूतामोखासुतकस्तूरचन्द्रयशराजौ ।
दत्वोदधिशतमेकं श्रीमहावीरप्रतिमामतिष्ठिपत्ताम् ।।५।।
हरनाथसुतष्टेकचन्द्रस्तच्चैत्यकोपरि ।
कलशारोपणं चक्रे, भूबाणगुणदायकः ।।६।।
पोमावापुरवासी हरनाथात्मजः खुमाजी श्रेष्ठी ।
पृथ्वीशरसमुद्रां प्रदाय ध्वजामारोपयामास ।।७।।
ओसवालरतनसुता हीरचेन नवलकस्तूरचन्द्रा ।
शशिवसुकरदा दण्ड-मतिष्ठिपन् कलापुरावासिनस्ते ।।८।।
राजेन्द्रसूरिशिष्यवाचकः मोहनविजयाभिधो धीरः ।
लिलेख प्रशस्तिमेनां, गुरुपदकमलध्यानशुभंयुः ।।९।।

।।इति श्रीकोरंटपुरमण्डन-श्रीमहावीरजिनालयस्य प्रतिष्ठाप्रशस्तिः ।।

- सं. १९५९ वैशाख सुदि १५ । मु. कोरटा मारवाड -

(२) श्री भाण्डवा तीर्थ

यह भाण्डवा अथवा भाण्डवपुर नाम का ग्राम जोधपुर से राणीबाड़ा जानेवाली रेल्वे लाइन के मोदरा स्टेशन से २२ मील दूर उत्तर-पश्चिम में चारों ओर से रेगिस्तान से घिरा हुआ है। यहाँ जैनेतरों के २०० घर आबाद हैं । यह ग्राम और मंदिर बहुत प्राचीन है । सर्वप्रथम जालोर (जाबालीपुर) के परमार भाण्डुसिंह ने इसको बसा कर इस पर शासन किया था। उसके वंशजों ने भी कितनी ही पीढ़ियों तक शासन किया। वि.सं. १३२२ में बावतरा के दय्या राजपूत बुहड़सिंह ने परमारों को परास्त कर इस पर अपना अधिकार स्थापित किया था । इसके वंशजों ने शनैः शनैः इस प्रान्त में सर्वत्र स्थान-स्थान पर अपना शासन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जमा लिया जिससे कलान्तर में इस प्रान्त का नाम ही दियावट-पट्टी हो गया । बाद में इस पर जोधपुर-नरेश का अधिकार हो जाने पर विक्रम संवत् १८०३ में जोधपुराधपि रामसिंह ने दय्या लुम्बाजी से इसे छीन कर समीपस्थ आणाग्राम के ठाकुर मालमसिंह को दिया । आज भी उक्त ठाकुर के वंशज भगवानसिंहजी यहाँ के जागीदार हैं।

विक्रम की ७ वीं शताब्दी में इस प्रान्त में बेसाला नाम का एक अच्छा कस्बा आबाद था। जिसमें जैन श्वेताम्बरों के सैंकड़ों घर थे। वहाँ एक भव्य मनोहर विशाल सौध-शिखरी जिनालय था। इसके प्रतिष्ठाकारक आचार्य का नाम क्या था और वे किस गच्छ के थे यह अज्ञात है। मात्र जिनालय के एक स्तंभ पर सं. ८१३ श्री महावीर इतना लिखा है।

बेसाला पर मेमन डाकुओं के नियमित हमले होते रहने से जनता उसे छोड़ कर अन्यत्र जा बसी, डाकुओं ने मन्दिर पर भी आक्रमण करके उसे तोड़ डाला, किसी प्रकार प्रतिमा को बचा लिया गया। जनश्रुत्यनुसार कोमता के निवासी संघवी पालजी प्रतिमाजी को एक शकट में विराजमान कर कोमता ले जा रहे थे कि शकट भांडवा में जहाँ वर्तमान में चैत्य है, वहाँ आकर रुक गया और लाख-लाख प्रयत्न करने पर भी जब गाड़ी नहीं चलीं तो सब निराश होगये । रात्रि के समय अर्ध-जागृतावस्था में पालजी को स्वप्न आया कि प्रतिमा को इसी स्थान पर चैत्य बनवा कर उस में विराजमान कर दो । स्वप्नानुसार पालजी संघवी ने यह मन्दिर विक्रम संवत् १२३३ माघ सुदि ५ गुरुवार को बनवा कर महामहोत्सव सहित उक्त प्रभावशाली प्रतिमा को विराजमान करा दिया। आज भी यहाँ पालजी संघवी के वंशज ही प्रति वर्ष मन्दिर पर ध्वजा चढ़ाते हैं। इसका प्रथम जीर्णोद्धार वि.सं. १३५९ में और द्वितीय जीर्णोद्धार विक्रम संवत् १६५४ में दियावट पट्टी के जैन श्वेताम्बर श्री संघने करवाया था।

विक्रमीय २० वीं शताब्दी के महान् ज्योतिर्धर परमक्रियोद्धारक प्रभु श्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज जब आहोर से संवत् १९५५ में इधर पधारे तो समीपवर्त्ती ग्रामों के निवासी श्रीसंघने उक्त प्रतिमा को यहाँ से नहीं उठाने और इसी चैत्य का विधिपूर्वक पुनरोद्धारकार्य सम्पन्न करने को कहा। गुरुदेवने सारी पट्टी में भ्रमण कर जीर्णोद्धार के लिये उपदेश भी दिये।

स्वर्गवास के समय वि.सं. १९६३ में राजगढ़ (मध्य भारत) में गुरुदेव ने कोरटा, जालोर, तालनपुर और मोहनखेड़ा के साथ इस तीर्थ की भी व्यवस्था-उद्धारादि सम्पन्न करवाने का वर्तमानाचार्य श्रीयतीन्द्रसूरिजी को आदेश दिया था। आपने भी गुर्वाज्ञा से उक्त समस्त तीर्थों की व्यवस्था तथा उद्धारादि के लिए स्थान-स्थान के जैन श्रीसंघ को उपदेश दे-देकर सब तीर्थों का उद्धार कार्य करवाया। श्री अभिधानराजेन्द्रकोष के संपादन और उसकी अर्थव्यवस्था में में लग जाने से थोड़े विलंब से इस तीर्थ के तृतीयोद्धार को आपने वि.सं. १९८८ में प्रारंभ करवाया जो कि वि.सं. २००७ में पूर्ण हुआ। इसकी प्रतिष्ठा का महामहोत्सव वि.सं. २०१० ज्येष्ठ सु. १ सोमवार को दशदिनावधिक उत्सव के साथ सम्पन्न हुआ था। इस प्रतिष्ठोत्सव में २५ सहस्र के लगभग जनता उपस्थित हुई थी। इस महामहोत्सव को इन पंक्तियों के लेखक ने भी देखा है। यहाँ यात्रियों के ठहरने के लिए मरुधरदेशीय श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक श्री संघ की ओर से मंदिर के तीनों ओर विशालकाय धर्मशाला बनी हुई है। मंदिर में मूलनायकजी के दोनों ओर की सब प्रतिमाजी श्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज के द्वारा प्रतिष्ठित है। मूल मंदिर के चारों कोनों में जो लघु मंदिर हैं, उनमें विराजित प्रतिमाएँ वि.सं. १९९८ में बागरा में श्रीमद्विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज के करकमलों से प्रतिष्ठित हैं, जो यहाँ २०१० के प्रतिष्ठोत्सव के अवसर पर विराजमान की गई हैं।

प्रत्येक जैन को एक बार अवश्य रेगिस्तान के इस प्रकट प्रभावी प्राचीन तीर्थ का दर्शन-पूजन करना चाहिए।[४]

(३) श्रीस्वर्णगिरितीर्थ-जालोर

यह प्राचीन तीर्थ जोधपुर से राणीवाड़ा जाने वाली रेलवे लाइन के जालोर स्टेशन के समीप स्वर्णगिरि नाम से प्रख्यात पर्वत पर स्थित है। नीचे नगर में प्राचीनार्वाचीन १३ मंदिर हैं। ऐसे भी उल्लेख मिलते हैं कि जालोर नवमी शताब्दी में अति समृद्ध था। वर्तमान में पर्वत पर किले में ३ प्राचीन और दो नूतन भव्य जिनमंदिर है। प्राचीन चैत्य यक्षवसति (श्री महावीर मंदिर), अष्टापदावतार (चौमुख) और कुमारविहार (पार्श्वनाथ चैत्य) हैं।

यक्षवसति जिनालय सबसे प्राचीन है। यह भव्य मंदिर दर्शकों को तारंगा के विशालकाय मंदिर की याद दिलाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसको नाहट (नामक राजा) ने बनवाया था ऐसा निम्न प्राकृत पद्य से ध्वनित होता है।

नवनवइ लक्खधणवइ अ लद्धवासे सुवण्णगिरि सिहरे।
नाहड़निवकारवियं थुणि वीरं जक्खवसहीए।।१।।

यानी यहाँ ९९ लक्ष रुपयों की संपत्ति वाले श्रेष्ठियों को भी रहने को स्थान नहीं मिलता था, किले पर सब करोड़पति ही निवास करते थे। ऐसे सुवर्णगिरि के शिखर पर नाहड (राजा) द्वारा निर्मित यक्षवसति में श्रीमहावीरदेव की स्तुति करो।

कुमारविहार जिनालय को सं. १२२१ के लगभग परमार्हत् महाराजाधिहाज कुमारपाल भूपाल ने कलिकाससर्वज्ञ श्रीमद् हेमचन्द्रसूरीन्द्र के उपदेश से कुमारविहार के गुणनिष्पन्न नामाभिधान से विख्यात यह चैत्य बनवाया था। पहले यह ७२ जिनालय था। परंतु सं. १३३८ के लगग अलाउद्दीन ने धर्मान्धता से प्रेरित हो जालोर (जाबालीपुर) पर चढ़ाई की थी, तब उस नराधम के पापी हाथों से इस गिरि एवं आबू के सुप्रसिद्ध मंदिरों से स्पर्धा करने वाले नगर के मनोहर एवं दिव्य मंदिरों का नाश हुआ था। उन मंदिरों की याद दिलाने वाली तोपखाना मस्जिद जो खण्डित मंदिरों के पत्थरों से धर्मान्ध यवनों ने बनवाई थी वह मस्जिद आज भी विद्यमान है। इस तोपखाने में लगे अधिकांश पत्थर खण्डित मंदिरों के हैं और अखण्डित भाग तो जैनपद्धति के अनुसार है। इस में स्थान-स्थान पर स्तम्भों और शिलाओं पर लेख हैं। जिनमें कितने ही लेख सं. ११९४, १२३९, १२६८, १३२० आदि के हैं।

उक्त दो चैत्यों के सिवाय चौमुख अष्टापदावतार चैत्य भी प्राचीन है। यह चैत्य कब किसने बनवाया यह अज्ञात है।

विक्रम संवत् १०८० में यहीं (जालोर में) रहकर श्रीश्री बुद्धिसागरसूरिवर ने सात हजार श्लोक परिमित श्री बुद्धिसागर व्याकरण बनाई थी, उसकी प्रशस्ति में लिखा है --

श्रीविक्रमादित्यनरेन्द्रकालात् साशीतिके याति समासहस्त्रे।
सश्रीकजाबालीपुरे तदाद्यं दृब्धं मया सप्तसहस्त्रकल्पम्।।११।.

बहुत वर्षों तक स्वर्णगिरि के ये ध्वस्त मंदिर जीर्णावस्था में ही रहे। विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी में जोधपुर-निवासी और जालोर के सर्वाधिकारी मंत्री श्री जयमल मुहणोत ने यहाँ के सब ध्वस्त जिनालयों का निजोपार्जित लक्ष्मी से पुनरुद्धार करवाया था और वि.सं. १६८१, १६८३ तथा १६८६ में अलग-अलग तीन बार महामहोत्सवपूर्वक प्राण-प्रतिष्ठाएँ करवा कर सैकड़ों जिन प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित करवाई थीं। साँचोर (राजस्थान) में भी जयमलजी की बनवाई प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं। इस समय वे ही प्रतिमाएँ प्रायः किले के सब चैत्यों में विराजमान है।

बाद में इन सब मंदिरों में राजकीय कर्मचारियों ने राजकीय युद्ध सामग्री आदि भर कर इनके चारों ओर काँटे लगा दिए थे। विहारानुक्रम से महान् ज्योतिर्धर आगमरहस्यवेदी प्रभु श्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज का वि.सं. १९३२ के उत्तरार्ध में जालोर पधारना हुआ। आप से जिनालयों की उक्त दशा देखी न गई। आपने तत्काल राजकर्मचारियों से मंदिरों की माँग की और उनको अनेक प्रकार से समझाया, परंतु जब वे किसी प्रकार नहीं माने तो गुरुदेव ने जनता से दृढ़तापूर्वक घोषणा की कि जब तक स्वर्णगिरि के तीनों जिनालयों को राजकीय शासन से मुक्त नहीं करवाऊँगा, तब तक मैं नित्य एक ही बार आहार लूँगा और द्वितीया, पंचमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी और अमावस्या तथा पूर्णिमा को उपवास करूँगा। आपने इसी कार्य को सम्पन्न करने के हेतु सं. १९३३ का वर्षावास जालोर में ही किया। यथासमय आपने योग्य व्यक्तियों की एक समिति बनाई और उन्हें वास्तविक न्याय की प्राप्ति हेतु जोधपुर-नरेश यशवंतसिंहजी के पास भेजा।

कार्यवाही के अंत में राजा यशवंतसिंहजी ने अपना न्याय इस प्रकार घोषित किया 'जालोरगढ़ (स्वर्णगिरि) के मंदिर जैनों के हैं, इसलिए उनका मन न दुखाते हुए शीघ्र ही मंदिर उन्हें सौंप दिए जाएँ और इस निमित्त उनके गुरु श्री राजेन्द्रसूरिजी जो अभी तक आठ महीनों से तपस्या कर रहे हैं, उन्हें जल्दी से पारणा करवाकर दो दिन में मुझे सूचना दी जाए।'

इस प्रकार गुरुदेव अपने साधनामय संकल्प को पूरा कर विजयी हुए।

गुरुदेव की आज्ञा से मंदिरों का जीर्णोद्धार प्रारंभ हुआ और वि.सं. १९३३ के माघ सु. १ रविवार को महामहोत्सवपूर्वक प्रतिष्ठाकार्य करवाकर गुरुदेव ने नौ (९) उपवास की पारणा करके अन्यत्र विहार किया। इस प्रतिष्ठा का परिचायक लेख श्री अष्टापदावतार चौमुख मंदिर में लगा हुआ है--

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'संवच्छुभे त्रयस्त्रिंशन्नन्दैकविक्रमाद्वरे।
माघमासे सिते पक्षे, चंद्रे प्रतिपदातिथौ।।१।।
जालंधरे गढे श्रीमान्, श्रीयशस्वन्तसिंहराट्।
तेजसाद्युमणिः साक्षात्, खण्डयामास यो रिपून्।।२।।
विजयसिंहश्च किल्लादार धर्मी महाबली।
तस्मिन्नवसरे संघैर्जीर्णोद्धारश्चः कारितः।।३।।
चैत्यं चतुर्मुखं सूरिराजेन्द्रेण प्रतिष्ठितम्।
एवं श्रीपार्श्वचैत्येऽपि, प्रतिष्ठा कारिता वरा।।४।।
ओशवंशे निहालस्य, चोधरी कानुगस्य च।
सुत प्रतापमल्लेन प्रतिमा स्थापिता शुभा।।५।।
श्रीऋषभजिनप्रासादात् उल्लिखितम्।।

इस समय भी श्री विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज अपने उपदेश से इन प्राचीन तीर्थ कल्प जिनमंदिरों का उद्धार कार्य करवाते रहते हैं एवं इसके हेतु सहस्रों रुपयों की सहायता करवाई है।

यद्यपि कोरटा एवं इस तीर्थ के संबंध में कतिपय लेखकों ने इतिहास लिखा है, किन्तु उपर्युक्त वास्तविक घटनाओं का वर्णन नहीं करने का जो भाव रखता है, वह अशोभनीय है।

४. तालनपुरतीर्थ (मध्यभारत)

आलिराजपुर से कुक्षी जाने वाली सड़क की दाहिनी ओर यह तीर्थ है। यह तीर्थस्थान बहुत प्राचीन है और ऐसा कहा जाता है कि पूर्वकाल में यहाँ २१ जिनमंदिर और ५ हजार श्रमणोपासकों के घर थे। यहाँ खंडहर रूप में बावड़ी, तालाब और भूगर्भ से प्राप्त होने वाले पत्थरों और जिनप्रतिमाओं से इसकी प्राचीनता सिद्ध होती है। शोधकर्त्ताओं का कहना है कि किसी समय यह नगर दो-तीन कोस के घेरे में आबाद था। वि.सं. १९१६ में एक भिलाले के खेत से आदिनाथबिम्ब आदि २५ प्रतिमाएँ प्राप्त हुईं। जिन्हें समीपस्थ कुक्षी नगर के जैन श्रीसंघ ने विशाल सौधशिखरी जिनालय बनवाकर उसमें विराजमान किया इनमें से किसी प्रतिमा पर लेख नहीं है, अतः यह कहना कठिन है कि ये किस शताब्दी की हैं। अनुमान और प्रतिमाओं की बनावट से ज्ञात होता है कि ये प्रतिमाएँ एक हजार वर्ष से भी अधिक प्राचीन हैं।

यहाँ जैन-श्वेताम्बरों के दो मंदिर हैं। एक तो उक्त ही है और दूसरा उसी के पास श्री गौड़ीपार्श्वनाथजी का है। पार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिमा वि.सं. १९२८ मग. सु. पूर्णिमा को सवा प्रहर दिन चढ़े पुरानी गोरवड़ावाव से निकली थी। यह श्री पार्श्वनाथ प्रतिमा सं. १०२२ फा. सु. ५ गुरुवार को श्री श्रीबप्पभट्टीसूरिजी के करकमलों से प्रतिष्ठित है।

इस प्रतिमा को वि.सं. १९५० माह वदि २ सोमवार को महोत्सवपूर्वक श्रीविजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज ने प्रतिष्ठित किया था।

इस स्थल के तुंगीयापुर, तुंगीयापत्तन और तारन (तालन) पुर ये तीन नाम हैं।

५. श्रीमोहनखेड़ा तीर्थ (मध्य भारत)

(श्री शत्रुञ्जयदिशिवंदनार्थ प्रस्थापित तीर्थ)

महामालव की प्राचीन राजधानी धारा के पश्चिम में १४ कोस दूर माही नदी के दाहिने तट पर राजगढ़ नगर आबाद है। यहाँ जैनों (श्वेताम्बरों) के २५० घर और ५ जिनचैत्य है। यहाँ से ठीक १ मील दूर पश्चिम में श्रीमोहनखेड़ातीर्थ स्थित है। यह तीर्थ श्री सिद्धाचलदिशिवंदनार्थ संस्थापित किया गया है। इसके निर्माता राजगढ़ के निवासी संघवी दल्लाजी लुणाजी प्राग्वाटने विश्वपूज्य चारित्रचूड़ामणि, शासनसम्राट् श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज से जब व्याख्यान में अपने कृत पापों का प्रायश्चित माँगा और गुरुदेव ने जो इस रमणीय शांतिप्रद स्थान पर श्री आदिनाथ प्रभु का चैत्य बनवाने का उपदेश दिया, उसके फलस्वरूप यह बना है। संघवी ने यह विशाल जिनालय शीघ्रातिशीघ्र बनवाकर गुरुदेव के करकमलों से महामहोत्सव-पूर्वक सं. १९४० मगसर सुदि ७ गुरुवार को इसको प्रतिष्ठासम्पन्न करवाया। इस मंदिर की मूलनायक-प्रतिमा श्री आदिनाथ भगवान की है, जो सवा हाथ बड़ी श्वेत वर्ण की है। मूल चैत्य से ठीक पीछे ही आरसोपल की मनोरम छत्री है, जिसमें श्री ऋषभदेव प्रभु के चरणयुगल प्रस्थापित हैं। इस मंदिर के दक्षिण में एक मंदिर और है, जिसमें श्री पार्श्वनाथ भगवान की तीन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। मूल मंदिर में ओइल पेंट कलर के विविध चित्र अंकित हैं।

उक्त मंदिरों के ठीक सामने तीर्थस्थापनोपदेश-कर्ता जैनाचार्य प्रभु श्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज का समाधि-मंदिर है, जहाँ विक्रम संवत् १९६३ पौष सु. ७ मोहनखेड़ा (राजगढ़) में श्रीसंघ ने उनके पार्थिव शरीर का अंत्येष्टि संस्कार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया था। समाधि-मंदिर के बन जाने पर इसमें गुरुदेव की प्रतिमा स्थापित की गई। इस सुंदर समाधि-मंदिर की भित्तियों पर गुरुदेव के विविध जीवन-चित्र आलेखित हैं। इस तीर्थ का उद्धार-कार्य हाल ही में वर्तमानाचार्य श्रीमद्विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज के उपदेश से सम्पन्न हुआ है। वि.सं. २०१३ चैत्र सु. १० को दोनों मंदिर और समाधि-मंदिर पर आपके ही करकमलों से ध्वजदण्ड समारोपित हुए हैं।

जब वि.सं. २०१२ ज्येष्ठ पूर्णिमा को लगभग १८ वर्षों के पश्चात् गुरुदेव श्रीमद्विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज का मुनिमण्डल सह यहाँ पर पदार्पण हुआ उस समय मालव-निवासी श्री संघ तीर्थदर्शन एवं गुरुदेव की मंगलमय वाणी को सुनने की उत्कण्ठा से लगभग चार हजार की संख्या में उपस्थित हुआ था। गुरुदेव का श्रीसंघ को यही उपदेश हुआ कि समाज की आध्यात्मिक उन्नति के लिए समाज में श्रेष्ठ गुरुकुलों का होना आवश्यक है, क्योंकि इस भौतिकवाद के युग में मानवमात्र को शांति की प्राप्ति यदि किसी से हो सकती है, तो वह एकमात्र धार्मिक सुशिक्षा से ही जो केवल गुरुकुल द्वारा ही प्रसारित की जा सकती है।

गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य कर श्रीसंघ ने श्रीमोहनखेड़ा तीर्थ में ही 'श्री आदिनाथ-राजेन्द्रजैन-गुरुकुल' नाम की शिक्षण संस्था का सर्वानुमति से खोलना तत्काल घोषित कर दिया। इस समय यह संस्था राजगढ़ में चल रही है और मोहनखेड़ा में भवन बन जाने पर निकट भविष्य में ही वहाँ प्रारंभ हो जाएगी। ।।इति।।

सन्दर्भ

१. उक्त पट्टावली में यह संवत् लिखा हुआ मिलता है। परन्तु इतिहासज्ञों के समक्ष यह अभी मान्य नहीं हो सका है।

- सम्पादक

२. 'संवत् १६२८ वर्षे श्रावण सुदि १ दिने, भट्टारक श्रीविजयप्रभ सूरीश्वर राज्ये श्रीकोरटानगरे, पण्डित श्री ५ श्री श्रीजय विजयगणिना उपदेशथी मु. जेतपुरा सिंगभार्या, मु. महाराय सिंगभार्या, सं. बीका, सांवरदास, को उधरणा, मु. जेसंग, सा. गांगदास, सा. ताधा, सा. खीसा, सा. छाँजर, सा. नारायण, सा. कचरा प्रमुख समस्त संघ भेला हुईने श्री महावीर पवासण बदूसार्या छे लिखितं गणी मणिविजयकेसरविजयेन बाहरा महवद सुत लाधा पदम लखतं, समस्त संघ नर मांगलिक भवति शुभं भवतु।'

३. उत्तमांग विकल महिला को मूलनायक रखना या नहीं रखना के लिए देखिये श्री वर्तमानाचार्य-लिखित 'श्रीकोरटाजी तीर्थ का इतिहास'

४. विशेष ज्ञातव्य बोतां के लिए कविवर मुनि श्रीविद्याविजयजी महाराज द्वारा लिखित 'श्री भाण्डवपुर जैन तीर्थ मण्डन श्रीवीरचैत्य - प्रतिष्ठामहोत्सव' देखिए

५. 'स्वास्ति श्री पार्श्वजिनप्रदेशात्संवत् १०२२ वर्षे मासे फाल्गुने सुदि पक्षे ५ गुरुवासरे श्रीमान् श्रेष्ठी श्रीसुखराज राज्ये प्रतिष्ठितं श्री बप्पभट्टी (ट्ट) सूरिभिः तुंगिया पन्तने।'

- श्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरि स्मारक ग्रंथ से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सौंदर्य - वृद्धि एवं उत्तम स्वास्थ्य सभी को प्रिय है। उबटन व मालिश इस दिशा में महती भूमिका निभाते है। स्त्रियों की इस क्षेत्र में विशेष रुचि रही है। श्रमणपरंपरा के ग्रंथों में सुंगधित उबटन बनाने एवं उनका शरीर पर लेपन करने की विशेष विधि का विवरण मिलता है [२०]।

ललितकलाओं में संगीत, गायन, वादन, चित्रकला को महत्त्वपूर्ण माना गया है। प्राचीन शास्त्रों में इन विद्याओं में पारंगत स्त्रियों का उल्लेख किया गया है। तैत्तरीय संहिता में कन्याओं की संगीत-अभिरुचि का वर्णन मिलता है [२१]। स्त्रियाँ पुरुषों की भाँति ही मंत्रों का सामगान किया करती थीं। उनमें मंत्रों के शुद्धाच्चारण तथा स्वरों के उचित आरोह एवं अवरोह की सामर्थ्य होती थी। भाव-भंगिमाओं और नृत्यकला में अन्योन्याश्रय संबंध है। मत्स्यपुराण में नृत्यकला में निष्णात नारियों का वर्णन मिलता है। नृत्यकला से सम्पन्न स्त्रियाँ विभिन्न प्रकार की भाव-भंगिमाओं के आधार पर पुरुषों को लुभाती थीं।[२२] चित्रकला में निष्णात नारियों में चित्रलेखा का अद्वितीय स्थान है। स्मृति के आधार पर रेखाचित्रों की सहायता से इसके द्वारा बनाए गए चित्रों को अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना गया है[२३]। शिल्पकला एक विज्ञान है। श्रमण-परंपरा में नन्दुत्तरा नामक स्त्री को शिल्प-कला एवं विविध प्रकार की वैज्ञानिक कलाओं की विज्ञ स्त्री माना गया है।[२४]

व्यावहारिक शिक्षा के लिए जहाँ व्यक्ति को अपने बुद्धि-कौशल का प्रयोग करना पड़ता है, वहीं आध्यात्मिक शिक्षा के लिए त्याग, संयम, तप आदि का अभ्यास अनिवार्य है। इन सबके लिए ब्रह्मचर्य, सदाचरण, उत्तमशील, सच्चारित्र्य जैसे सम्यक् आचरण का पालन करना होता है। इनके अभ्यास से योग और तप सिद्ध किए जा सकते हैं। इन्हें सिद्ध करने से ज्ञान की अभिवृद्धि होती है और इनकी सहायता से आध्यात्मिक उत्क्रान्ति या शिक्षा को प्राप्त किया जा सकता है। यह शिक्षा स्वाध्याय मात्र से ही संभव नहीं है। बल्कि इसके लिए विभिन्न तरह के कार्यों को आचरण में लाना पड़ता है। वैदिक परंपरा में ब्रह्मवादिनी स्त्रियों को आध्यात्मिक शिक्षा की धारिका माना जाता है। जबकि श्रमण-परंपरा में श्रमणसंघ में प्रविष्ट स्त्रियों को इस प्रकार की शिक्षा से युक्त माना गया है।

शिक्षा का उद्देश्य

शिक्षा का उद्देश्य मानव-व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास में निहित माना जाता है। मनुष्य के बाह्य एवं अंतरंग सभी गुणों को पूर्ण विकसित किए बिना सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास कर पाना संभव नहीं है। वैदिक एवं श्रमण दोनों ही परंपराओं में व्यक्तित्व की पूर्णावस्था को मोक्ष, निर्वाण अथवा कैवल्य कहा गया है। यह अध्यात्म की पराकाष्ठा है जो लौकिक साधनों को अपनाकर एवं उनका त्याग करके प्राप्त की जाती है। शिक्षा का भी यही परम उद्देश्य है।

सामान्यतया शिक्षा को लौकिक हितों को पूरा करने का एक माध्यम मान लिया जाता है। कुछ अर्थों में इसे स्वीकार किया जा सकता है। परंतु शिक्षा का एकमात्र यही उद्देश्य मान लिया जाए तो यह कदापि स्वीकार्य नहीं हो सकता। यदि इस लौकिक उत्थान के पीछे आध्यात्मिक उन्नति का भाव भी पनपता रहे तभी इसे समुचित कहा जाएगा। वस्तुतः शिक्षा का यही परम ध्येय है। उपनिषदों में इस बात पर बल दिया गया है तथा यह स्पष्ट करने का प्रयत्न भी हुआ है कि शिक्षा-प्राप्ति का उद्देश्य कर्म प्रधान होते हुए भी मुक्ति के लिए था। शिक्षापद्धति में कर्म की उपेक्षा न थी, बल्कि इसकी अपेक्षा वहीं तक थी जहाँ तक यह मोक्ष-प्राप्ति में सहायक बन सके। कर्म जीवन को जगत् से आबद्ध करने के लिए नहीं, बल्कि इससे विमुक्त करने के लिए था[२५]। यहाँ कर्म धर्म था कामना नहीं, कर्त्तव्य था स्वेच्छा नहीं, मुक्ति था बंधन नहीं।

शिक्षा मनुष्य में अंतर्निहित शक्तियों को उद्घाटित करती है। यह मनुष्य के महनीय गुणों को उद्भासित एवं विकसित करती है। इसके कारण व्यक्ति लौकिक एवं पारलौकिक सुखों को प्राप्त करने की क्षमता से युक्त हो जाता है। बृहत्कथाकोश में कहा भी गया है कि निर्दोष तथा श्रमपूर्वक अभ्यस्त विद्या ऐहिक एवं पारलौकिक कार्यों को सफल बनाती है [२६]। शिक्षा प्राप्त करने के बाद मनुष्य आत्म-अनात्म के भेद को समझने लगता है। वह आत्मस्वातंत्र्य के अर्थ से भलीभाँति परिचित हो जाता है। उसके जीवन के लिए वास्तव में क्या उपादेय है इसे समझने लगता है और उसकी क्रिया भी इसी के अनुरूप होती है। वह आत्मोन्मुख होकर परम शांति को प्राप्त करता है। आचार्य कुंदकुंद शिक्षा के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा की ओर उन्मुख कराने वाली शिक्षा ही उपादेय है, क्योंकि यही व्यक्ति को आत्मा को स्वतंत्र कराने की शक्ति प्राप्त कराती है।[२७]

आत्मस्वातंत्र्य का यह भाव व्यक्ति में श्रेष्ठ गुणों का संचार करता है। वह अपनी शक्ति का सम्यक् उपयोग करता है। उसके समक्ष उसका लक्ष्य स्पष्ट रहता है और वह उसे प्राप्त करने के लिए एकाग्रचित्त होकर अपनी संकल्प शक्ति को दृढ़ बनाता है। दशवैकालिक में शिक्षा के संबंध में कहा गया है [२८]- व्यक्ति को शिक्षा द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है। चित्त की एकाग्रता प्राप्त होती है। स्वयं एवं दूसरों को धर्म में स्थापित करने की क्षमता प्राप्त होती है। अनेक प्रकार के श्रुतों का अध्ययन किया जाता है जिनके कारण व्यक्ति श्रुत-समाधि में रत हो जाता है। श्रुत-समाधि में रत व्यक्ति विविध प्रकार की विद्याओं का ज्ञान प्राप्त करता है। वह अपनी इस ज्ञान-क्षमता का प्रयोग हेय-उपादेय के निर्णय में करता है। इसमें सफल होकर सम्यक् प्रयास करके परम उपादेय को प्राप्त कर सर्वदुःखों से मुक्त हो जाता है। वह सत्-चित्-आनंद की अवस्था में रमण करने लगता है। उसके मन में 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' का भाव हिलोरें मारने लगता है। यही शिक्षा की ओजस्विता है और उद्देश्य की पराकाष्ठा भी।

वैदिक एवं श्रमण वाङ्मय के इस अनुशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वैदिक एवं श्रमण दोनों ही परंपराओं में नारी-शिक्षा की पर्याप्त एवं समुचित व्यवस्था थी। स्त्रियाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भाग लेती थीं। वे सफल गृहिणी होने के साथ-साथ कुशल एवं परमविदुषी अध्यापिका भी होती थीं। वे ललितकलाओं व ज्ञान -विज्ञान के विविध विषयों में निष्णात प्रखर बुद्धि की धारिका होने के साथ-साथ आध्यात्मिक गुणों से सम्पन्न विवेकवान व्यक्तित्व की स्वामिनी भी होती थीं।

संदर्भ

१. सर्वं खल्विदं ब्रह्म। छान्दोग्य उपनिषद्, ३/१४/१, गीताप्रेस, गोरखपुर

२. शतपथ ब्राह्मण, ११/५,७, पूना संस्करण

३. महापुराण (भाग-२), ३८/४३, अनु.-पं. पन्नालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी १९७१

४. नास्ति विद्या समं-चक्षुः। महाभारत, १२/३३९/६, गीताप्रेस, गोरखपुर

५. ज्ञानं तृतीयं मनुजस्य नेत्रं, समस्ततत्त्वार्थविलोचन दक्षम्। शुभाषितरत्नसन्दोह,पृष्ठ १९४, निर्णयसागर प्रेस, बंबई १९२६

६. अप्पाणं ठावइस्सामि ति अज्झाइयव्वं भवइ। दसवेआलियसुतं, ९/४/४, मूलसुत्ताणि (कन्हैयालालजी कमल), आगम अनुयोग प्रकाशन, वखतावरपुरा, सांडेराव (राजस्थान), वीर संवत् २५०३

७. एन.एन. मजुमदार-हिस्ट्री ऑफ एडुकेशन इन इन्सिएन्ट इंडिया, पृ. ५८, मूल ग्रंथ उपलब्ध नहीं होने के कारण यह उद्धरण डा. निशान्द शर्मा द्वारा लिखित पुस्तक 'जैन - वाङ्मय में शिक्षा के तत्त्व' (पृ. १६), वैशाली शोध संस्थान, वैशाली १९८८ के आधार पर दिया गया है।

८. अलब्रेट वेबर : द हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर, पृ. २०-२२, चौखंभा संस्कृत सीरीज, वाराणसी-१९६१

९. स्वामी माधवानंद एवं रमेशचंद्र मजुमदार-ग्रेट वीमेन ऑफ इंडिया, पृ. ९५, अद्वैत आश्रम, मायावती, अल्मोड़ा १९५३

१०. छात्रादयाः शालायाम् ,पाणिनि, ६/२/४७

११. ओघनिर्युक्ति, (द्रोणाचार्य), आ.वि.सू.जै. ग्रंथमाला, सूरत १९५७ , गाथा ६२२-६२३

१२. एफ.इ. की- इंडियन एडुकेशन इन इन्सिएन्ट एण्ड लेटर इंडिया,पृ. ७८-७९ , आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९४२

१३.बृहदारण्यक उपनिषद्, ४/५/१

१४. की : इंडियन एडुकेशन इन एन्सिएन्ट एण्ड लेटर टाइम्स, पृष्ठ ७४ एवं ७९

१५. वही, पृ. ७५

१६. दीघनिकाय- १/९६, नालंदा देवनागरी पालि ग्रन्थमाला, बिहार, १९५८

संयुत्तनिकाय ३/११, नालंदा देवनागरी पालि ग्रंथमाला, बिहार, १९५९

१७.अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे भूयांस उद्गीथविदो वसन्ति। तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां वाल्मीकिपार्श्वादिहपर्यटामि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तररामचरित, २/३

१८.संयुत्तनिकाय ३/१११, नालंदा देवनागरी पालि ग्रन्थमाला, बिहार, १९५९

१९. ऋग्वेद संहिता १/१९१/१४, ८/८१/५-६, ३/५५/१२, संपा.- जयदेव शर्मा, आर्य साहित्य मंडल लिमिटेड, अजमेर

२०. आचारांग सूत्र, २/२/३ सू. ३१७-३१८, श्री सिद्धचक्र साहित्य प्रचारक समिति, बंबई १९३५

सूयगडं, १/४/२/७, संपा.-डा. पी.एल. वैद्य, पूना १९३५

नायाधम्मकहाओ, १/१/१३, संपा डा. पी.एल. वैद्य, पूना १९४०

महावग्ग, पृ. २८७, नालंदा देवनागरी पालि-ग्रंथमाला, विहार, १९५६

२१.तैत्तरीय संहिता ६/१/६/५

२२.मत्स्यपुराण ८२/२९, १३१/१९, संपा.- श्रीराम शर्मा, बरेली

२३.विष्णुपुराण ३२/२२, संपा. श्री राम शर्मा, बरेली

२४.परमत्थदीपिनी (थेरगाथा की अट्ठकथा) पाली टेक्स्ट सोसायटी, लंदन १९४०

२५.तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये।

२६.बृहत्कथाकोश १९/८२ संपा.- डा.ए.एन. उपाध्ये, भारतीय विद्या भवन, बंबई, संवत् १९९९

२७.जो वेददि वेदिज्जदि समए विणस्सहे उभय तं जाणगो इ णाणी उभयंपि ण कंखइ कयापि। समयसार २१६, अनु.-पं. परमेष्ठी दास न्यायतीर्थ, जैन ग्रन्थमाला, मारोड मारवाड़, १९५३

२८. १. सुयं मे भविस्सइ त्ति अज्झाइयव्वं भवइ।

२. एगग्गचित्तो भविस्सामि त्ति अज्झाइयव्वं भवइ।

३. अप्पाणं ठावइस्सामि त्ति अज्झाइयत्वं भवइ।

४. ठिओ परं ठावइस्सामि त्ति अज्झाइयव्वं भवइ। दसवेआलियं ९/४

मूलसुत्ताणि--मुनि कन्हैयालाल 'कमल'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org